GYANBODH

ISSN:3048-9792
Volume: 2
Issue: 4
July- August: 2025

वन्दना राग : हिजरत से पहले और ख़यालनामा

सरस्वती आर. गांवित

पीएच़डी शोघार्थी, गुजरात युनिवर्सिटी. पंजीकरण नंबर-10319

मार्गदर्शक-डॉ.सुरेश पटेल

वंदना राग के प्रकाशीत दो कहानी-संग्रहों 'हिजरत से पहले' और 'ख़यालनामा' में क्रमशः दस और सात कहानियाँ हैं. शीर्षक कहानी 'हिजरत से पहले' में लुदरू, उसका बेटा जीवन और जीवन का नेता दोस्त लक्ष्मण ,एंकर ईनू जोशी, कैमरामैन हिम जैसे पात्रों के माध्यम से कहानीकार ने अपनी कहानी को सघनतापूर्वक बुना है. किसी भी हिंसा को दिल से सही नहीं माननेवाला लुदरू अंततः स्वयं को शहीद कर लेता है. आहिस्ता आहिस्ता अपने अंत तक पहुँचने वाली यह कहानी, आदिवासियों और उनकी प्राकृतिक संपदा के हक़ में तो है, मगर उसके लिए अपनाए जानेवाले नक्सलवाद को सही नहीं मानती. आदिवासियों के साथ खड़े लोग भी कैसे इसकी चपेट में आ जाते हैं, कहानी इसे सूक्ष्मतापूर्वक चित्रित करती है. 'स्वांग', पिता की मृत्यु के उपरांत सदमाग्रस्त एक बेटी की कहानी है और उसके बहाने जीवन की आपाधापी के बीच मृत्यु के शोक को कुछ ही समय में हाशिए पर चले जाने को यहाँ चित्रित किया गया है. 'देवा...देवा', महाराष्ट्र की सूखाग्रस्त खेती, अभावग्रस्त और पलायनवादी हो रहे एक मराठी किसान और अंतहीन निराशा के बीच अंधविश्वासों की खाई में गिरते उसके परिवार की कहानी है, जो एक परिवार के बहाने पूरे अंचल विशेष की कथा कहती है. प्रकटतः अन्धविश्वास का पोषण करती दिखती यह कहानी मूलतः समाज में प्रचलित अंधविश्वास पर व्यंग्य करती है, जिसे टूल्स बनाकर लेखिका ने किसानों की विकल्पहीनता को गहरा करने का प्रयास किया है.

पति परमेश्वर' कहानी में सहाय जी और उनकी पत्नी संध्या के बहाने आम मध्यमवर्गीय घरों की दैनिक दिनचर्या में झाँका गया है. पुरुष मनोविज्ञान को बेहतर रूप में चित्रित करती यह कहानी, हल्की-फुल्की होकर भी ज़िंदगी में भीतर तक झाँकती है. वंदना की भाषा में एक निरपेक्षता है, जिसके उस्तरे से पात्रों को तराशा गया है. यह निरपेक्षता, कई बार एक खिलंदड़ी भाषा ('आँखें') का निर्माण करती है तो कभी उदासी का स्लेटी रंग ('आज रंग है') रचती है. कभी अतीतजीवी ('और उस साल सब हार गए') हो जाती है तो कभी छेड़छाड़ करती ('पति-परमेश्वर'). वंदना का गद्य कहीं चटपटा है तो कहीं विचारशील. यह कभी

गाली-गलौज से भरा हुआ है तो कभी इसमें अंतर्मन की यात्रा की गई है. मगर जो और जैसा है, अनुरक्ति और विश्वास के साथ सृजित है. यही, वंदना की लेखनी की ताकत है.

आए दिन धोखे या कहें दुराव-छिपाव से शादी करने की घटनाएँ हमें देखने को मिलती हैं. धोखे को दुतरफा धार वाली तलवार न मानने का हश्र क्या हो सकता है, यह 'क्या देखो दर्पण में' कहानी को पढ़कर समझा जा सकता है. 'कठकरेज', गाँव की पृष्ठभूमि में क्रमशः अकेले पड़ते और अंततः मर जानेवाले एक वृद्ध की कहानी है. समाज की आपराधिक बुनावट के बीच बुनी वंदना की कहानी 'आज रंग है', उनकी दूसरी कहानियो की ही तरह संश्लिष्ट है और किसी नायकत्व से इतर, पात्रों का सहज रचाव यहाँ भी दिखता है. समीर और मल्लिका की यह प्रेम कहानी, मूलतः एकतरफ़ा प्रेम कहानी है. समीर जैसा एक मध्यवर्गीय चरित्र अपनी कल्पनाशीलता में मल्लिका को लेकर जितनी दूर तक सोचता चला जाता है, यह कहानी उसे ठीक ठीक पकड़ती है. चुन्नू यादव जैसे आपराधिक रसूखदारों को केंद्र में रखने से यह कहानी सचमुच हमारे आसपास घटित होती दिखती है. हाल हाल तक 'बीमारू' कहे जानेवाले हिंदी प्रदेशों के कॉलेजों और मुहल्लों में ऐसी घटनाएँ और दृश्य बड़े आम थे. सच्चे प्रेमी या तो चुप रह जाते थे या चुप करा दिए जाते थे. एक जगह पराजित दिखते उसी समीर को पहले प्रेमिका और बाद में पत्नी के रूप में श्रुति मिलती है. और शुरू से मजबूत और आक्रामक दिखते सैमी को उसकी प्रेमिका छोड़ जाती है. कहानी के अंत को वंदना के कहानीकार ने समुचित रूप में या कहें कुछ तार्किक परिणति के साथ निर्वाहित किया है. एक तरफ़ प्ले बॉय की छवि को हरदम विजेता नहीं माना जा सकता (सैमी के चरित्र के रूप में) तो दूसरी तरफ़ मल्लिका जैसी लड़कियां भी हैं, जो अपने जीवन में उपलब्ध विकल्पों के बीच एक आसान रास्ते पर चलना पसंद करती हैं. हालांकि इसके पीछे किसी अपराधी छवि वाले 'रॉबिन हुड' के प्रभाव ,भय और अहसान के मिले जुले भावों के बीच चुन्नू यादव के समक्ष किया गया उसका आत्मसमर्पण भी हो.

यह मन्नू भंडारी की चर्चित कहानी 'यही सच है' से आगे जाती है. चीजों को सरलीकृत किए जाने के प्रतिरोध में वंदना का कहानीकार यहाँ भी तत्पर नजर आता है. जो मल्लिका, समीर की स्मृतियों में कहीं गहरी पैठी है, उसकी छाती के बीचों-बीच लगी गोली से निकले रक्त के लाल रंग को उसका अवचेतन भूल नहीं पाता है. जीवन की प्रेरणा (मल्लिका)और जीवन के सच (श्रुति) के बीच वह लाल रंग जमकर एक धब्बे के रूप में तब्दील हो गया है. यहाँ कोई जीतता है और न कोई हारता है. शायद, जीवन का रंग भी यही है. कुछ सूफ़ियाना किस्म का जहाँ राग-विराग अलग-अलग नहीं, एक साथ हैं.

GYANBODH
ISSN:3048-9792
Volume: 2
Issue: 4
July- August: 2025

कहा जा सकता है कि भाषा का संयत इस्तेमाल और तह दर तह कहानियों को खोलना, वंदना के कहानीकार को भली-भाँति आता है. पात्रों की आदतों और उनकी छोटी छोटी हरकतों को लेखिका इस क़दर प्रस्तुत करती है कि उनका एक सजीव दृश्य पाठकों के सामने आ उठता है. एक लंबे मोनोलॉग की सी कहानी 'ख़यालनामा' व्यक्ति के भीतरी मनोभावों की गुत्थियां खोलता, एक मनो-सामाजिक कहानी है, जहाँ व्यक्ति अपने भीतर से चालित और नियंत्रित होकर बाहर में अपनी भूमिका तय करता है. अंदर से बाहर की यह यात्रा, मगर हर बार नियंत्रण और तय किए गए मानदंडों से इतर भी चली जाती है. ऐसी कहानियों में व्यक्ति के भीतर चल रहे उठापटक को ठीक ठीक पकड़ना, कहानीकार के लिए एक चुनौती का सबब बन जाता है.

वंदना राग की कई कहानियाँ 'मैं' शैली में लिखी गई हैं. इससे कहानियों में एक प्रामाणिकता और आत्मदग्धता सहज ही आ जाती है. वंदना की कहानियों में कई बार ऐतिहासिक दृष्टि-संपन्नता भी देखने को मिलती है और उन कहानियों को अपने तईं युग-चेतना से संपृक्त करती है. यह कहानी, 'ऑनर कीलिंग' पर आधारित दूसरी अन्य कहानियों की तरह होती, मगर इसमें लेखिका ने काल-बोध को लाकर इसकी निरंतरता को हमारे सामने रखा है और इससे यह कहानी कुछ अधिक कालजयी बन गई है. यद्यपि यह प्रकटतः 'ऑनर कीलिंग' से संबंधित कहानी नहीं है, मगर उसके तर्ज़ पर इसे 'ऑनर-टार्चरिंग' निश्चय ही कहा जा सकता है, जिसके कई प्रत्यक्ष विवरण कहानी में मौजूद हैं. 'आज सनीचर चढ़ा है रे', एक शराबी और ग़ैर जिम्मेदार पिता के घर में असुरक्षित उसकी छोटी बच्ची की कहानी है.

गाँवों और शहरों की आवाजाही पर वंदना ने इन दोनों संग्रहों में कई कहानियाँ लिखी है. यह किसी लेखक की साहित्यिक विविधता के लिए आवश्यक है. इससे वह अपनी लेखकीय पुनरावृत्ति से बचता है. इन पृष्ठभूमियों पर बेहतर और प्रामाणिक ढंग से लिखी कहानियाँ, वंदना राग की जीवटता और उनके लेखन की 'जैव विविधता' दोनों को सिद्ध करती है. गाँवों में शहरों के सपने होते हैं और शहरों में गाँवों की स्मृतियाँ. पैरों की चपलता, शहर की ओर भागती है और शहर में थके पाँव, गाँव आकर सुस्ताना चाहते हैं. शहरों में अपने अपने ठिए हैं और भीड़ के बीच व्यक्ति का अपना एकांत. गाँवों में सामूहिकता है और सामूहिकता के अपने संघर्ष और लोगों की सच्ची-झूठी बनी छवियाँ.मगर इन सबके बावजूद दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं, पूरक हैं. आज, दोनों को बचाए रखने और संभाले जाने की ज़रुरत है. हाँ, दोनों के बीच की दिखती असमानता को वंदना का कहानीकार अपने तरीके से रखता है. 'सिनेमा के बहाने' कहानी में कथावाचक राजीव चावला के बहाने सिनेमा की कई अंतर्कथाओं को यहाँ चित्रित किया गया है. उसके दोनों दोस्तों शलभ कुलकर्णी और माधव किशोर के साथ पूरी कहानी गुँथी गई है.

वंदना राग का कहानीकार बहुत ठहरकर चलता है. अगर पाठक भी उतना ही ठहरकर उन्हें पढ़े, तो वह उन विवरणों में डूबता चला जाता है. ये कहानियाँ अपने पाठकों से भी यही अपेक्षा रखती हैं. मसलन 'क्रिसमस कैरोल' कहानी को ही लिया जाए. दो सहेलियों के परस्पर भिन्न मताग्रहों के बीच गुँथी इस कहानी में वंदना ने अपने लेखकीय मिज़ाज के अनुरूप अपने पात्रों के बेहतर स्केच खींचकर उन्हें जीवंत बनाया है. कहानी की नायिका, अपनी सहेली स्टेला द्वारा अपने होठों को गीला करने के उसके प्रयास पर सोचती है और उसकी वर्तमान स्थिति को मन ही मन दर्ज़ करती चलती है, "मैं देखकर सन्न रह जाती हूँ कि ऐसा करते वक़्त वह सेक्सी कम ज़रूरतमंद ज़्यादा लगती है".

एक सधी हुई भाषा में घटनाक्रम को बहुत लाउड किए बग़ैर दोनों के बीच के विवाहेतर संबंध को या कहें उनके आत्मिक रिश्ते को अभिव्यक्त किया गया है. इसमें अगर सिर्फ स्त्री की यौनिकता और उसकी देह स्वतंत्रता को देखा जाए तो यह कहानी के मूल उद्देश्य के साथ अन्याय होगा. अपने पुत्र की उम्र से थोड़े बड़े अनूप चौधुरी से स्टेला की निकटता कहीं इससे आगे जाती है. प्रकट और घोषित तथ्यों के बीच दबे हुए सच को जब तब जोर शोर से उजागर करनेवाली स्टेला के आत्म निरीक्षण की यह कहानी है. पारंपरिक तरीके से और मध्यवर्गीय कसौटियों पर कसे और सिद्ध हुए मूल्यों के साथ चलनेवाली कथावाचिका और स्टेला की आपसी वैचारिक टकराहट के बहाने वंदना ने इस विषय पर बिना आग्रही हुए एक संवेदनशील कहानी को रचा है. जो कथावाचिका सहेली, इस बढ़ते जाते संबंध पर एक पैनी, तीक्ष्ण और कुछ संशकित निगाहें जमाई हुई थी, जिस अपूर्व चौधुरी से स्टेला को दूर रहने की हिदायत दे चुकी थी,बाद में वही कथावाचिका इस पूरे प्रसंग में कोमलता और अकलुषता को लाकर मानों अपनी मध्यवर्गीय कसौटी से कहीं आगे जाकर स्वयं को भी कसने का प्रयास करती है.

अपनी कई दूसरी कहानियों में भी वंदना ऐसे ही कुछ जटिल चरित्रो को हमारे सामने खोलती हैं. कहा जा सकता है कि उनकी कहानियाँ चाहे जिस परिवेश और काल को आधार बनाकर लिखी गई हों, वहाँ मनोविश्लेषण का ठंडा तेज चाकू अपना काम ज़रूर कर रहा होता है. प्रकटतः दिखती स्थितियों और प्रत्यक्ष दिखते चरित्रों के भीतर चल रहे ऊहापोह को वे बखूबी पकड़ पाती हैं, जो उन्हें कथाशिल्प के स्तर पर निर्मल वर्मा और गीतांजलि श्री के करीब ठहराती है. स्वतंत्रता संघर्ष की पृष्ठभूमि में लिखी कहानी ‘और उस साल सब हार गए’, समाज के विभिन्न वर्गों के आपसी अंतर्द्वंद्व को स्पष्ट करती है.‘त्वचा’, गुलामी से पहले और उसके बाद के कालों को बेहतर रूप से जोड़ने में सफल रही है. कुछ तात्कालिक ‘सांस्कृतिक संकेतकों’ (Cultural indicators) के बीच इन दोनों कहानियों में इतिहास से बाहर किए गए आम लोगों के संघर्ष, मूल्य और उनके योगदान को चित्रित किया गया है. 'विरासत' कहानी में पिता के श्वेत-श्याम पक्ष का इस तरह

GYANBODH
ISSN:3048-9792
Volume: 2
Issue: 4
July- August: 2025

चित्रण होता है कि अपने बच्चों को खुश करने में लगे पिता अंततः अनियमित दवाई और समुचित रख रखाव के बगैर एक दिन दुनिया छोड़ जाते हैं.

एक ईमानदार आदमी का हश्र क्या होता है, वह कितना निरीह होता है, इसके बहाने व्यवस्था में पिसते ऐसे नायकों की बेबसी को उभारा गया है. फिर भी उस वृद्ध के बड़े बेटे को इन तमाम अभावों के बीच उनके टूटे फूटे मूल्य भी बेहतर ही लगते हैं. हालाँकि इसका अहसास उसे, उनकी मौत के उपरांत होता है. हलक को सुखाती 'दो ढाई क़िस्से' कहानी, अपनी पूरी संश्लिष्टता को जीती वंदना की एक परिपक्व रचना है. रागात्मकता हक़ीक़त से अधिक हक़ीक़त के ख़याल में होती है. व्यक्ति अंततः अकेला ही है, इस सर्वमान्य तथ्य को अपने तईं यह कहानी प्रभावी रूप में रखती है. दुनिया जहान की कहानी सुनाने वाले क़िस्सागो की निजी कहानी कोई नहीं सुनना चाहता. उसे ब्रांड के रूप में स्थापित करनेवाले निगम साहब और न ही उस ब्रांड को सुनने आया श्रोता समूह. उसे भटकने तक की इज़ाज़त नहीं. लोग रागात्मकता को भी किस यांत्रिकता से ले रहे हैं, कहानी इस मनोस्थिति को बख़ूबी पकड़ती है. कहा जा सकता है कि वंदना के पास कहानियों का अपना खज़ाना है और कहन का एक ख़ास अंदाज़. वन्दना राग का कहानीकार, अपनी ओर से बहुत 'जजमेंटल' नहीं होता. वह अपने पात्रों में किसी एक के साथ खड़ा होने में यकीन नहीं रखता. उनके पात्र, एकदम से श्वेत और श्याम किस्म के नहीं हैं. समय और समाज की कई आंतरिक जटिलताओं के बीच ऐसा संभव भी नहीं होता. वे परिस्थितियों के अनुसार या उनके बीच गढ़े गए और बड़े स्वाभाविक दिखते हैं. अतः पाठकों को वहाँ गलदश्रु भावुकता कम ही मिलती है.